ISSN: 0973-0583

प्राचीन शिक्षण पद्धति और तक्षशिला विश्वविद्यालय: बौद्ध काल के विशेष सन्दर्भ में

प्रो० राजीव रंजन

संकायाध्यक्ष, छात्र कल्याण, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

तक्षशिला प्राचीन भारत का एक महत्वपूर्ण शिक्षा और सांस्कृतिक केंद्र था, जहाँ वैदिक काल से लेकर ईसा की पहली शताब्दी तक ज्ञान और विद्या का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। यह गांधार देश की राजधानी थी और तीन प्रमुख व्यापार मार्गों की उत्तरापथ, उत्तरपश्चिमी मार्ग और सिन्धु नदी मार्ग के संगम पर स्थित थी। तक्षशिला प्राचीन भारत का एक प्रमुख शिक्षा केंद्र था, जहाँ विविध विषयों राजनीति, चिकित्सा, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, शिल्पकला, युद्धकला आदि की शिक्षा दी जाती थी। यह गुरुकुल प्रणाली पर आधारित था, जहाँ आचार्य अपने व्यक्गित आश्रमों में शिष्यों को पढ़ाते थे। छात्र अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार विषय चुनते थे और शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान अर्जन नहीं बल्कि सामाजिक और बौद्धिक उत्थान था। निर्धन छात्रों को राज्य और समाज से आर्थिक सहायता मिलती थी, जिससे शिक्षा सभी के लिए सुलभ थी। विद्या केंद्र के रूप में तक्षशिला की प्रतिष्ठा 600 ई.पू. से लेकर कुषाण काल तक बनी रही, लेकिन विदेशी आक्रमणों, विशेष रूप से हूणों के कारण इसका पतन हो गया। इसकी शिक्षा प्रणाली ने भारतीय ज्ञान परंपरा में महत्वपूर्ण योगदान दिया और आज भी इसकी गुरु-शिष्य परंपरा और व्यावहारिक शिक्षा प्रासंगिक बनी हुए है।

शब्द कुंजी: उत्तरापथ, गुरुकुल प्रणाली, वर्ण-परंपरा, जातक कथाएँ, उपनयन संस्कार, समावर्तन संस्कार, गुरु-शिष्य परंपरा, धर्म-शिष्य, धनुविद्या, सिद्धिविहारिक

Received : 10/5/2025 **Acceptance : 25/6/2025**

वैदिक-युग में शिक्षा का महत्व आर्यों ने समझा था, क्योंकि यह वह विद्या थी जिससे व्यक्ति, व्यक्ति से समाज, समाज से राष्ट्र का अभ्युदय और श्रेय की सिद्धि मिलती थी। भौतिक सिद्धि और आध्यात्मिक मुक्ति की नींव शिक्षा पर ही थी। शिक्षा का जो क्रम वैदिक-युग से चला था, वह किसी न किसी रूप में ईसा की प्रथम सदी तक जारी रहा। प्राचीन तक्षशिला के खंडहरों को खोज निकालने का प्रयत्न सबसे पहले जनरल कनिंघम ने शुरू किया था, किन्तु ठोस काम 1912 ई0 के बाद ही भारतीय पुरातत्व विभाग की ओर से सर जॉन मार्शल के नेतृत्व में शुरू हुआ और अब उसके कई स्थानों पर बिखरे हुए अवशेष खोद निकाले गए हैं। लगता है, भिन्न भिन्न युगों में नगर विदेशी आक्रमणों के कारण ध्वस्त होकर नई बस्तियों के रूप में इधर-उधर सरकता रहा। उसकी सबसे पहली बस्ती पाकिस्तान के रावलपिंडी जिले में भीर के टीलों से, दूसरी बस्ती रावलपिंडी से 22 मील उत्तर सिरकप के खंडहरों से और तीसरी बस्ती उससे भी उत्तर सिरसुख से मिली है। ये बस्तियाँ क्रमश: पाँचवीं और दूसरी शतीं ईस्वी पूर्व के बीच, दूसरी और पहली शती ईस्वी पूर्व के बीच (यूनानी बाख्ती युग) तथा पहली शती ईसा पूर्व और पहली ईसवी शती के मध्य (शक-कुषाण युग) की मानी जाती हैं। खुदाइयों में वहाँ अनेक स्तूपों और विहारों (विशेषत: कुणाल विहार) के चिह्न मिले हैं।[1] (आर्केयोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की रिपोर्ट,1912-13 की, 1923-24 की तथा 1928-29 की मार्शल कृत ए गाइड टु तक्षशिला, दिल्ली 1936)

तक्षशिला प्राचीन भारत में गांधार देश की राजधानी और शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ का विश्वविद्यालय विश्व के प्राचीनतम विश्वविद्यालयों में शामिल है। वर्तमान समय में तक्षशिला, पाकिस्तान के पंजाब प्रान्त के रावलपिण्डी जिले की एक तहसील तथा महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थल है जो इस्लामाबाद और रावलपिंडी से लगभग 32 किमी उत्तर-पूर्व में स्थित है। ग्रैंड ट्रंक रोड इसके बहुत पास से होकर जाता है। यह स्थल 1980 से यूनेस्को की विश्व विरासत सूची में सम्मिलित है। वर्ष 2010 की एक रिपोर्ट में विश्व विरासत फण्ड ने इसे उन 12 स्थलों में शामिल किया है जो अपर्याप्त प्रबन्धन, विकास का दबाव, लूट, युद्ध और संघर्ष आदि के कारण अपूरणीय क्षति होने के

कगार पर हैं।[2] (एन्शिएन्ट इंडिया, पुरातत्व विभाग की बुलेटिन, 1947-48) उपलब्ध साहित्यिक एवं पुरातात्विक अवशेषों का इतिहासविदों और पुरातत्वविदों ने गहन अन्वेषण और अवलोकन के आधार पर तक्षशिला का पूर्ण वर्णन किया है। यह हिन्दू एवं बौद्धों दोनों के लिए महत्व का केन्द्र था। चाणक्य यहाँ पर आचार्य थे। 405 ई. में फाह्यान यहाँ आया था।

ऐतिहासिक रूप से यह तीन महान मार्गों के संगम पर स्थित था:

1. उत्तरापथ- वर्तमान ग्रैण्ड ट्रंक रोड, जो गांधार को मगध से जोड़ता था।
2. उत्तरपश्चिमी मार्ग- जो कापिश और पुष्कलावती आदि से होकर जाता था।
3. सिन्धु नदी मार्ग- श्रीनगर, मानसेरा, हरिपुर घाटी से होते हुए उत्तर में रेशम मार्ग और दक्षिण में हिन्द महासागर तक जाता था।

तक्षशिला की विस्तृत जानकारी सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण से होती है। ऐतिहासिक परम्पराओं के अनुसार राम ने अपने भाई भरत के पुत्र तक्ष को इस जनपद का शासक नियुक्त किया था। अत: इस नगरी का नाम तक्षशिला (तक्षशिल) प्रसिद्ध हुआ।[3] अयोध्या के राजा रामचन्द्र की विजयों के उल्लेख के सिलसिले में हमें यह ज्ञात होता है कि उनके छोटे भाई भरत ने अपने नाना केकयराज अश्वपति के आमंत्रण और उनकी सहायता से गंधर्वों के देश (गांधार) को जीता और अपने दो पुत्रों को वहाँ का शासक नियुक्त किया। भरत के तक्ष और पुष्कल नामक दोनों पुत्रों ने तक्षशिला और पुष्कलावती नामक अपनी-अपनी राजधानियाँ बसाई।[4] तक्षशिला सिंधु के पूर्व तट पर थी। भरत के वंशजों ने तक्षशिला पर कितने दिनों तक शासन किया, यह बता सकना कठिन है। महाभारत युद्ध के बाद परीक्षित के वंशजों ने कुछ पीढ़ियों तक वहाँ अधिकार बनाए रखा और जनमेजय ने अपना नागयज्ञ वहीं किया था।[5] गौतम बुद्ध के समय गांधार के राजा पुक्कसाति ने मगधराज बिम्बिसार के यहाँ अपना दूतमंडल भेजा था। छठी शती ई. पूर्व फारस के शासक कुरुष ने सिंधु प्रदेशों पर आक्रमण किया और लगता है, तक्षशिला उनके कब्जे में चली गई और लगभग 200 वर्षों तक उसपर फारस का अधिपत्य रहा। मकदूनिया के आक्रमणकारी विजेता सिकंदर के समय की तक्षशिला की चर्चा करते हुए स्ट्रैबो ने लिखा है (हैमिल्टन और फाकनर का अंग्रेजी अनुवाद, तृतीय, पृष्ठ 90) कि वह एक बड़ा नगर था, अच्छी विधियों से शासित था, घनी आबादीवाला था और उपजाऊ भूमि से युक्त था। बैसिलियस अथवा टैक्सिलिज वहाँ का शासक था। उसने सिकंदर से उपहारों के साथ भेंट कर मित्रता कर ली। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र भी, जिसका नाम अभी था, सिकंदर का मित्र बना रहा, किंतु थोड़े ही दिनों पश्चात् चंद्रगुप्त मौर्य ने उत्तरी पश्चिमी सीमा क्षेत्रों से सिकंदर के सिपहसालारों को मारकर निकाल दिया और तक्षशिला पर उसका अधिकार हो गया। वह उसके उत्तरापथ प्रांत की राजधानी हो गई और मौर्य राजकुमार मंत्रियों की सहायता से वहाँ शासन करने लगे। उसका पुत्र बिंदुसार, पौत्र सुसीम और प्रपौत्र कुणाल वहाँ बारी-बारी से प्रांतीय शासक नियुक्त किए गये। दिव्यावदान से ज्ञात होता ता है कि वहाँ मत्रियों के अत्याचार के कारण कभी-कभी विद्रोह भी होते रहे और अशोक (सुसीम के प्रशासकत्व के समय) तथा कुणाल (अशोक के राजा होते) उन विद्रोहों को दबाने के लिये भेजे गए। मौर्य साम्राज्य की अवनति के दिनों में यूनानियों के आक्रमण होने लगे और उनका तक्षशिला पर अधिकार हो गया तथा दिमित्र (डेमेट्रियस) और यूक्रेटाइड्स ने वहाँ शासन किया। फिर पहली शताब्दी ईस्वी पूर्व में तिथियों और पहली शती ईस्वी में शकों ने बारी-बारी से उस पर अधिकार किया।

तक्ष ने यहाँ एक महान विद्या केन्द्र की स्थापना की। साधारणतया तक्षशिला को विश्वविद्यालय के नाम से संबोधित किया जाता है, पर विश्वविद्यालय की आधुनिक अवधारणा से यह स्पष्टतया अलग था। विश्वविद्यालय का कोई केन्द्रीय संगठन नहीं था। यहाँ आचार्य और शिक्षक किसी शिक्षण संस्थान के नियमित सदस्य या सेवक नहीं थे और न ही किसी नियमित पाठ्यक्रम को निर्धारित समय में पढ़ा कर पूरा करते थे। न ही यहाँ के स्नातकों को अध्ययन पूरा कर लेने पर कोई निर्धारित उपाधि प्राप्त होती थी। यहाँ आचार्यों के वेतन और छात्रों के शुल्क का भी निश्चित निर्धारण नहीं था। यह विस्तृत भूभाग में फैला था।

तक्षशिला में विविध विधाओं के आचार्यों ने अपने अलग-अलग व्यक्तिगत आश्रम और विद्यालय स्थापित किये थे। वास्तव में यह विद्या का ऐसा केंद्र था जहाँ अलग-अलग छोटे-छोटे गुरुकुल होते और व्यक्गित रूप से विभिन्न विषयों के आचार्य आगंतुक विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते थे। किंतु इस बात का ध्यान रखते हुए कि उस समय के गुरुकुलों पर गुरुओं के अतिरिक्त अन्य

किसी अधिकारी अथवा केंद्रीय संस्था का कोई नियंत्रण नहीं होता था, यह असंभव नहीं जान पड़ता कि तक्षशिला के सभी गुरुकुलों के छात्रों की सारी संख्या और उन अलग अलग गुरुकुलों का समवेत स्वरूप आधुनिक विश्वविद्यालयों से विशेष भिन्न न रहा हो। कभी-कभी तो एक-एक गुरुकुल में पाँच-पाँच सौ विद्यार्थी होते थे।[6] (जातक, प्रथम, फाउसबोल्ल (संपा.), ट्रेवनर एण्ड कंपनी, लंदन, 1877) निश्चित रूप से उनमें विभिन्न विषय अवश्य पढ़ाए जाते होगें। उनको महाविद्यालयों की संज्ञा देना अनुचित न होगा।

आचार्यों की विद्या, नाम और कीर्ति से आकृष्ट होकर ही छात्र उनके चरणों में बैठकर विद्याध्ययन करते थे। शिष्य की योग्यता और रुचि को देखकर आचार्य उनके अध्ययन के विषय, पाठ्यक्रम और अवधि स्वयं निर्धारित करते थे। इस प्रकार पूरा तक्षशिला नगर आचार्यों से भरा था और इसी कारण इसे विश्वविद्यालय के स्थान पर नगर-विद्यालय कहना ज्यादा श्रेयष्कर है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में तक्षशिला विश्वविद्यालय की शैक्षणिक गतिविधियों का विस्तृत परिचय बौद्ध साहित्य विशेषकर जातकों से प्राप्त होता है। तक्षशिला विश्वविद्यालय में उच्च अध्ययन की व्यवस्था थी। अत: यहाँ बड़ी आयु के विद्यार्थी ही अध्ययन के लिए प्रवेश लेते थे। वे अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न विषयों की उच्च शिक्षा ग्रहण करते थे। वैदिक काल में जिन विषयों की पढ़ाई होती थी, वे ही विषय बौद्ध काल में भी पढ़ाये जाते थे। वे प्रधानत: 13 विषय थे। इनमें राजनीति, नास्तिक-शास्त्र, आन्वीक्षिकी, दण्डनीति, शिल्प, कला, नृत्य व चित्रकला तो थे ही, वेद, वैदिक सूत्र, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, वेदांग, ज्योतिष, दर्शन, धर्मशास्त्र आदि भी थे। वेदों का महत्व बौद्ध काल में जरा भी कम नहीं हुआ था।[7] लेकिन तक्षशिला विश्वविद्यालय विशेष रूप से व्यावसायिक शिक्षा के लिए पूर्ण ख्याति प्राप्त हो गया था, जहाँ विभिन्न व्यवसायों तथा चिकित्सा संबंधी शिक्षा दी जाती थी। शल्य-चिकित्सा, धनुर्वेद, युद्धकला, अर्थशास्त्र, व्यापार, कृषि, रथचालन, इंद्रजाल, वशीकरण, गुप्तलिपिज्ञान, संगीत और दंडनीति जैसे विषयों के अध्ययन के लिए तक्षशिला विश्वविद्यालय की विशेष ख्याति थी। उज्जैनी से दंडनीति और धर्मशास्त्र (विधि) की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आने वाले छात्रों के विवरण भी मिले हैं। यहाँ से शिक्षा प्राप्त करने वालों में बड़े-बड़े सम्राट और विख्यात विद्वान थे। तक्षशिला के स्नातकों में भारतीय इतिहास के कुछ अत्यंत प्रसिद्ध पुरुषों के नाम मिलते हैं। अनेक राजकुमार इस विश्वविद्यालय में क्षत्रियोचित शिक्षा धनुर्वेद, शस्त्र संचालन, गजविद्या आदि सीखने के लिए आते थे। ब्राह्मण यहाँ वेद वेदांग आदि पढ़ने के लिए आते थे। यहाँ से प्राप्त आयुर्वेद संबंधी जीवक के अपार ज्ञान और कौशल का विवरण विनयपिटक से मिलता है। चाणक्य वहीं के स्नातक और अध्यापक थे और उनके शिष्यों में सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ चंद्रगुप्त मौर्य, जिसने अपने गुरु के साथ मिलकर मौर्य साम्राज्य की स्थापना की। कोशल-नरेश प्रसेनजित, वैयाकरण पाणिनि तथा पतंजलि यहाँ से शिक्षा ग्रहण करके अपने-अपने क्षेत्र में विख्यात हुए। धनुर्विद्या के क्षेत्र में भी यह विख्यात था जहाँ एक समय में 103 राजकुमार शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।[8] महाभारत से ज्ञात होता है कि आचार्य धौम्य के शिष्य उपमन्यु, आरुणि और वेद ने तक्षशिला में ही शिक्षा ग्रहण की थी।

शिक्षा में वर्ण-परम्परा अनिवार्य नहीं थी। तक्षशिला विश्वविद्यालय में सभी वर्गों के लिए प्रवेश विहित था। परन्तु वर्ण-बाह्य होने से चांडालों के लिए प्रवेश वर्जित था। एक जातक के अनुसार संभवत: इसी कारण उज्जैनी के दो छात्रों ने अपने चांडाल-वर्ण के होने की बात छिपा कर इस विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया था।[9] (कृष्ण कुमार, भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति, श्री सरस्वती सदन, नयी दिल्ली,1999)

विषयों के चयन में भी वर्ण बाधक नहीं था। द्विजों के सभी सदस्य एक साथ शिक्षा प्राप्त करते थे। कोई भी छात्र किसी भी वर्ण के योग्य शिक्षा ग्रहण कर सकता था। ब्राह्मण के साथ क्षत्रिय भी वेदाध्ययन करते थे और क्षत्रिय के साथ ब्राह्मण भी धनुर्विद्या की शिक्षा प्राप्त करते थे। जातकों से विदित होता है कि एक ब्राह्मण राजपुरोहित ने अपने पुत्र को धनुर्विद्या की शिक्षा प्राप्त करने के लिए तक्षशिला भेजा था। आचार्य के यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के साथ-साथ दर्जी और मछली मारने वाले जाति के लोग भी शिक्षा ग्रहण करते थे। बौद्ध काल में वृषल चाण्डाल के ज्ञानी होने की भी कथा आई है।[10] इस वृषल ने एक विद्वान ब्राह्मण को प्रश्न पूछकर निरुत्तर कर दिया था। महाभारत की एक कथा के अनुसार जाजलि चाण्डाल ने विश्वामित्र को सत्यानृत का उपदेश दिया था। आर्य-संस्कृति में ज्ञान और शिक्षा में भेदभाव बरता नहीं जाता था।[11] जो पतित होता था उसी से दूर रहने की बात कहीं जाती थी।

बौद्ध काल में वृषल होने से न तो कोई पतित माना जाता था और न ब्राह्मण होने से पूज्य। पतित ब्राह्मणों और पूज्य वृषलों की चर्चा बहुत से ग्रंथों में है। यह स्थिति इस युग की जाति-व्यवस्था के लचीलेपन की ओर भी इंगित करता है।

यह कहना कठिन है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय में छात्रों की संख्या कितनी होती थी। एक जातक कथा के अनुसार तक्षशिला विश्वविद्यालय के एक आचार्य के पास 500 छात्र होते थे। परन्तु यह संख्या अधिक प्रतीत होती है। 'सुतसोम' जातक के अनुसार एक आचार्य 50 छात्रों के अध्यापन के लिए समर्थ था। 'सेलसुत' जातक में शैल नामक एक ब्राह्मण का वर्णन आया है जो 300 विद्यार्थियों को वेद पढ़ाता था। सेलसुत से यह प्रमाणित होता है कि उस युग में भी ब्राह्मण आचार्य 300 विद्यार्थियों को अपने निकट रखकर पढ़ाते थे। अनुमान किया जाता है कि मुख्य आचार्य अपने साथ सहायक आचार्यों की नियुक्ति अवश्य करते होगें।

जातकों से यह भी सिद्ध होता है कि विद्यार्थी उपनयन संस्कार के तत्काल बाद ही नहीं, बल्कि 14 या 15 वर्ष की उम्र में, जब वे इस योग्य हो जाते थे कि सुदूर स्थान में अपना ध्यान रख सकें, गुरुकुलों में भेजे जाते थे। यह भी संभव है कि स्थानीय अभिभावक गुरुकुलों में निवास करने के लिए अपने बालकों को न भेजते रहे हों। किन्तु ऐसी घटनाएँ अधिक नहीं होती होंगी। इसके विपरीत यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं कि अपने नगर में ही योग्य आचार्य रहने पर भी धनी-मानी व्यक्ति अपने बच्चों को दूर के गुरुकुलों में भेजने के लिए विशेष रूप से सतर्क रहा करते थे। क्योंकि वे गुरुकुल प्रणाली से लाभ उठाने के लिए उत्सुक रहते थे।[12] (अनंत सदाशिव अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, नंदकिशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, 2014)

योग्य शिष्यों को सद्धिविहारिक कहा जाता था। बौद्ध काल में छात्रों के शील पर सर्वप्रथम ध्यान दिया जाता था। चरित्र पर निगाह रखी जाती थी। यह विश्वास किया जाता था कि जिसका चरित्र गिरा हुआ हो वह किसी ज्ञान का अधिकारी नहीं है। ये सारी चीजें हम पाल-काल तक, नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों में भी पाते हैं। आचार्य के यहाँ शरण प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त न था। अनेक उपायों से आचार्य अपने शिष्य के ज्ञान की परीक्षा लेते रहते थे।[13] यदि विद्यार्थी बिल्कुल ही जड़मति हुआ तो उसे अपने पास से खर्च देकर वापस घर भेज देते थे।[14] उल्लेखनीय है कि शिष्य भी आचार्य पर कड़ी निगाह रखता था। जातक कथाओं से यह प्रमाणित होता है कि प्रमादी आचार्य का शिष्य शासन करता था।[15]

बौद्ध काल का आचार्य वैदिक-युग के आचार्य की तरह 'उपास्य-देवता' माना जाता था। निर्धन विद्यार्थी, यदि आचार्य की दृष्टि में सत्पात्र हुआ तो, रख लिया जाता था। उसे गुरु के निकट स्थान मिलता था तथा उसे 'धर्म-शिष्य' कहते थे।[16] आचार्य का घरेलू कार्य भी शिष्य करता था- यह उसका कर्तव्य था। वैदिक-युग से लेकर बौद्ध काल तक यह नियम प्रचलित था।[17]

गुरु और शिष्य के बीच पिता और पुत्र के उच्च संबंध की कल्पना बौद्ध काल के आचार्यों ने की थी 'पुत्रमिवैनमभिकांक्षन। इस काल के आचार्य अपने पेशे की पवित्रता का पूरा निर्वाह करते थे।[18]

वैदिक-युग की तरह आचार्य गुरु-दक्षिणा भी बौद्ध काल में प्राप्त करते थे।[19] धनी और निर्धन दोनों प्रकार के छात्र समान रूप से गुरु के शिष्य हो सकते थे। तत्कालीन युग में धनी छात्र धनराशि के रूप में गुरु-दक्षिणा देता था और निर्धन छात्र श्रम करके गुरु दक्षिणा प्रदान करता था। जो शिष्य कुछ भी नहीं देता था वह आचार्य के घर का काम करता था। कभी-कभी आचार्य योग्य विद्यार्थी से अपनी कन्या का विवाह भी कर देते थे।[20] धनी छात्रों द्वारा प्रायः 100 कार्षापण गुरु को दक्षिणा के रूप में अर्पित किया जाता था। योग्य और मेधावी छात्रों को राजकीय सहायता पर शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा जाता था।[21] वाराणसी और राजगृह के राजपुरोहित-पुत्र और युवराजों के साथ जाने वाले ऐसे छात्रों को देखा जा सकता है। समाज के धनिक-वर्ग द्वारा भी आर्थिक सहायता आचार्य की सेवा में भेजी जाती थी। स्पष्ट है कि बौद्ध काल में प्रतिभाशाली किन्तु निर्धन छात्रों को राज्य और समाज की ओर से प्रत्येक संभव सहयोग प्राप्त होता था।

अध्ययन के विविध विषयों की शिक्षा में तक्षशिला विश्वविद्यालय में सिद्धान्त और प्रायोगिक या क्रियात्मक दोनों का प्रशिक्षण अनिवार्य था। तद्विषयक साहित्य के अध्ययन के साथ ही क्रियात्मक प्रशिक्षण भी आचार्य द्वारा प्रदान किया जाता था। उदाहरण के रूप में चिकित्सा विज्ञान के अध्ययन में अध्यापक के निर्देशन में छात्र क्रियात्मक प्रयोग करते थे। चिकित्सा के लिए वनस्पतियों के ज्ञान का बहुत महत्व था। अतः वनस्पतियों की पहचान करने के लिए छात्रों को वनों में और अन्य स्थानों पर भेजा

जाता था। वनस्पतियों की पहचान के लिए जीवक ने विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया था।

अन्य अनेक विषयों में पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त कराने के पश्चात् आचार्य द्वारा प्रायोगिक ज्ञान छात्र पर ही छोड़ दिया जाता था। एक जातक कथा में एक ब्राह्मण छात्र का विवरण मिलता है, जिसने धनुर्वेद का अध्ययन किया। पुन: प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसने विभिन्न स्थानों की यात्रा की और अपने अध्ययन को पूरा किया। ऐसे अनेक छात्रों के विवरण प्राप्त होते हैं, जिन्होंने तक्षशिला विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के बाद प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए विभिन्न स्थानों की यात्राएँ की।

बौद्ध काल में स्वाध्याय को बहुत उच्च स्थान मिला था। एक आचार्य की गाथा आई है, जो पहले तो ब्रह्मचर्य-आश्रम में रहकर वेद पढ़ते ओर पढ़ाते थे। लेकिन बाद में वे गृहस्थाश्रम में चले गये। फलत: स्वाध्याय में गड़बड़ी पैदा हो गयी और वेदों का तत्वार्थ उन्हें रुचने नहीं लगा। वह भगवान बुद्ध की सेवा में अपनी कष्ट-कथा सुनाने आये। भगवान बुद्ध ने उन्हें फिर से आरण्यवासी होने की राय दी क्योंकि गृहस्थाश्रम में रहकर वह स्वस्थ-चित्त से वेदाध्ययन नहीं कर सकता था और बिना स्वाध्याय किये तत्वार्थ का बोध होना असंभव था।

जातक में एक ऐसी भी गाथा आई है जब पढ़ने वाले शिष्यों में यह मिथ्या अहंकार फैल गया कि वे अपने आचार्य से अधिक विज्ञ हो गये।[22] आचार्य को जब यह पता चला तब उसने एक ऐसा प्रश्न पूछ दिया कि शिष्यों का दिमाग ठंढा पड़ गया। आचार्य ने शिष्यों को फटकारा। मिथ्या अहंकार से ग्रस्त शिष्यों ने आचार्य से क्षमा मांगी और स्वाध्याय में लग गए। सत्य का बराबर बोध कराकर आचार्य शिष्य को बहकने नहीं देता था। बौद्ध काल के आचार्यों द्वारा बोलकर पढ़ाने की पद्धति प्रचलित थी जो आज तक विद्यमान है।

जब आचार्य यह कह देता था कि जितना मैं जानता हूँ, उतना तू जानता है, जितना तू जानता है; उतना मैं जानता हूँ; तब विद्यार्थी घर लौट आता था। आलारकालाम और उदकरामपुत्र के यहाँ से ऐसा ही उत्तर मिलने पर सिद्धार्थ को वहाँ से हट कर ज्ञान की खोज में भ्रमण करते हम पाते हैं। कभी-कभी हम ऐसा भी पाते हैं कि आचार्य से प्रमाण-पत्र लेकर विद्यार्थी लौट आता था, तो फिर दूसरा विषय पढ़ने के लिए उसके अभिभावक गुरु-दक्षिणा के साथ उसी आचार्य के यहाँ वापस भेज देते थे।[23]

बौद्ध काल की शिक्षण पद्धति और उस समय की शिक्षा का लक्ष्य केवल विषयों का ज्ञान कराना ही नहीं था। बल्कि शिक्षा जीवनमय हो और जीवन के प्रत्येक अंग को सबल बना कर समाज के स्तर को उपर उठाने के लिए शिक्षा दी जाती थी। यह काम बड़े-बड़े त्यागी आचार्य रात-दिन करते थे आचार्य अपने कर्त्तव्य का पालन प्राण-पण से तो करते ही थे। समाज भी ऐसे त्यागी आचार्यों के लिए सारा प्रबंध करता था, जिसमें उसे अपने कार्य करने में पूरी सुविधा रहे।

इस युग में भी शिक्षा का परम लक्ष्य मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास ही था। इसके अतिरिक्त यश एवं वैभव प्राप्त करना बौद्धकालीन शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य था।

विद्याकेन्द्र के रूप में तक्षशिला को 600 ई.पू. में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इसकी कीर्ति चारों दिशाओं में व्याप्त थी। बौद्ध साहित्य के अनुसार उस युग के शिक्षाप्रेमी अपने बच्चों की शिक्षा की पूर्णता तभी समझते थे, जबकि उन्होंने तक्षशिला विश्वविद्यालय में अध्ययन किया हो। अनेक राजवंश अपने बालकों को यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजते थे। उस युग में यात्रा और प्रवास बहुत अधिक कठिन थे। बालकों के तक्षशिला भेजे जाने के पश्चात् समावर्तन-संस्कार होकर ही वापस आना संभव हो पाता था। इन घटनाओं का अपने जीवनकाल में सम्पन्न हो पाना माता-पिता के लिए अत्यधिक सौभाग्य की बात थी। तथापि माता-पिता अपने बालकों के भविष्य का विचार करके इस खतरे को उठाते ही थे। जातक कथाओं से विदित होता है कि काशी, राजगृह, मिथिला, उज्जैनी, कुरु, कोसल आदि जनपदों के दूर-दूर होने पर भी राजवंशों और समृद्ध घरों के बालक तक्षशिला शिक्षा प्राप्त करने जाते थे।

तक्षशिला विश्वविद्यालय का गौरव संभवत: ईसा की प्रथम शताब्दी में लुप्त होना प्रारम्भ हो गया था। भारतवर्ष पर ई.पू. 6ठी शताब्दी में विदेशियों के आक्रमणों के प्रारम्भ हो जाने के ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। 6ठी शताब्दी ई.पू. में पारसिकों के और 4थी शताब्दी ई. पू. में यूनानियों (सिकंदर) के आक्रमण पश्चिम दिशा से हुए थे। सिकंदर के आक्रमण के समय तक्षशिला का राजा आंभी था जिसने सिकंदर की अधीनता स्वीकार कर ली। पाँचवीं शताब्दी में हूणों ने भारत पर जो विध्वंसक आक्रमण किये, उनमें तक्षशिला नगर भी ध्वस्त हो गया। वास्तव में

तक्षशिला के विद्याकेंद्र का पतन शकों और उनके यूची उत्तराधिकारियों के समय से ही प्रारभ हो गया था। गुप्तों के समय जब फाह्यान वहाँ गया तो उसे वहाँ विद्या के प्रचार का कोई विशेष चिह्न नहीं प्राप्त हो सका था।

गंधार पर कुषाणों ने भी अधिकार कर लिया था। 320 ई. तक यहाँ कुषाणों का अधिकार रहा। इस समय तक तक्षशिला विश्वविद्यालय का गौरव कुछ हद तक बना रहा था। परन्तु इसके बाद विदेशी आक्रांताओं ने इस विद्यानगरी को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। कुषाणों के बाद अति दुर्दान्त छोटे यूचियों ने तक्षशिला पर अधिकार कर लिया। तथापि इसका कुछ अस्तित्व बना रहा। परन्तु 6ठी शताब्दी ई.पू. में हूण आक्रमणकारियों ने इस विद्याकेन्द्र का सम्पूर्ण रूप से विनाश कर दिया।

निष्कर्ष:

बौद्ध काल में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्ति नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान भी था। शिक्षण गुरुकुल प्रणाली पर आधारित थी, जहाँ विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए श्रवण, मनन और निदिध्यासन के माध्यम से ग्रंथों का अध्ययन करते थे। बौद्ध ग्रंथों की मौखिक परंपरा और संवाद-संस्कृति को विशेष महत्व प्राप्त था। तक्षशिला विश्वविद्यालय, जो वर्तमान पाकिस्तान के रावलपिंडी क्षेत्र में स्थित था, 6वीं शताब्दी ईसा पूर्व से 5वीं शताब्दी ईस्वी तक सक्रिय रहा। यह बौद्ध काल में एक प्रमुख शिक्षा केन्द्र था। यहाँ संस्कृत, तर्कशास्त्र, चिकित्सा, गणित, ज्योतिष, दर्शन और बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन होता था। पाणिनि, चाणक्य और जीवक इसके प्रमुख छात्र रहे। प्रवेश योग्यता आधारित था, शिक्षा नि:शुल्क थी, और गुरु-दक्षिणा के रूप में सेवा या ज्ञान का प्रसार अपेक्षित होता था। बौद्ध भिक्षुओं ने इसे अंतरराष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र बनाया, जहाँ महायान और हीनयान संप्रदायों के ग्रंथों का अध्ययन होता था। ध्यान, करुणा और अहिंसा जैसे बौद्ध मूल्य शिक्षा में समाहित थे। तक्षशिला विश्वविद्यालय धर्म, दर्शन और विज्ञान के समन्वय का गौरवशाली प्रतीक था। इस प्रकार, तक्षशिला विश्वविद्यालय न केवल बौद्ध काल की शिक्षण पद्धति का गौरवशाली प्रतीक था, बल्कि धर्म, दर्शन और विज्ञान के समन्वय का जीवंत उदाहरण भी था। इसकी परंपरा आज भी भारतीय ज्ञान-परंपरा की प्रेरणा स्रोत बनी हुई है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. आर्केयोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की रिपोर्ट, 1912-13 की, 1923-24 की तथा 1928-29 की मार्शल कृत ए गाइड टु तक्षशिला, दिल्ली 1936.
2. एन्शिएन्ट इंडिया, पुरातत्व विभाग की बुलेटिन, 1947-48 पृष्ठ 41 और आगे।
3. रामायण, उत्तरकांड, 103. 10-16.
4. रघुवंशम पंद्रहवाँ, 88-9, वाल्मीकि रामायण, सप्तम, 101.10-11, वायुपुराण, 88.190, महाभारत, प्रथम सर्ग 3.22
5. महाभारत, स्वर्गारोहण पर्व, अध्याय 5
6. जातक, प्रथम, फाउसबोल्ल (संपा.), ट्रेवनर एण्ड कंपनी, लंदन, 1877 दृ 96, पृष्ठ 239, 317, 402(तृतीय, पृ. 18, 235 आदि)
7. सेतकेतु-जातक 377.
8. विश्वमुत्ति-जातक।
9. कृष्ण कुमार, भारत की प्राचीन शिक्षण पद्धति, श्री सरस्वती सदन, नयी दिल्ली, 1999, ई. 341.
10. सेतकेतु जातक 377.
11. रामायण, सुंदर कांड, सर्ग 18, श्लोक 2.
12. अनंत सदाशिव अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, नंदकिशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, 2014, पृ. 24.
13. नांगलिसा जातक 123.
14. वही.
15. दुब्बका जातक 116.
16. तिलमुठठी जातक 252.
17. गुण जातक 157 (महाभारत, वनपर्व) 1/25, 11-12.
18. अनंत सदाशिव अल्तेकर, वही ।
19. ऋग्वेद, मंडल-1, सूक्त-125, मंत्र-6.
20. सिलविमंसना जातक 305.
21. जातक, प्रथम, फाउसबोल्ल (संपा.), ट्रेवनर एण्ड कंपनी, लंदन, 1877 दृ 96, पृष्ठ 522.
22. मूल-परीय जातक 245.
23. असातमंत जातक, 61.